मासिक

मधुमती

वर्ष 57, अंक 09 : सितम्बर, 2017, दीनदयाल विशेषांक

प्रकाशक
सचिव
राजस्थान साहित्य अकादमी
सेक्टर-4, हिरण मगरी
उदयपुर (राज.) - 313 002
दूरभाष : 0294-2461717

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. विनीत गोधल

प्रबन्ध सहयोग
राजेश मेहता
प्रकाश नेभनानी

आवरण एवं रेखांकन सज्जा
चेतन औदिच्य एवं
राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर के सौजन्य से

अंक का मूल्य : ₹ 10 (एक प्रति)

वार्षिक शुल्क : ₹ 120

(वार्षिक शुल्क केवल धनादेश, बैंक-ड्राफ्ट या नकद
सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के नाम से ही भेजें)

मुद्रक
स्वदेशी ऑफसेट
3/17वां उमराव की हवेली, श्रीनाथ मार्ग
खेरादीवाड़ा, उदयपुर (राज.)-313 001
मो. 9414168693, 0294-2417204

'मधुमती' में प्रकाशित लेखों / रचनाओं में व्यक्त विचार / तथ्य लेखकों के अपने हैं।
अकादमी से इनकी सहमति होना आवश्यक / अनिवार्य नहीं है और न ही अकादमी इसके लिए उत्तरदायी है।

अनुक्रम

सम्पादकीय...
- भारतीय पथ का अन्वेषी : महामनीषी दीनदयाल — डॉ. इन्दुशेखर 'तत्पुरुष' — 07

सर्ग
दीनदयाल उवाच — 14
- प्रकृति संस्कृति और विकृति — 16
- शिक्षा : व्यक्ति निर्मात्री एवं समाज संचालिका — 19
- क्रांति के अग्रदूत विनोबा — 22
- समाजवाद, लोकतंत्र अथवा मानवतावाद — 27
- एकात्म मानववाद — 29
- हिंदी यहाँ है — 33
- संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही एकमात्र रास्ता — 35
- हिंदी का विरोध निराधार — 38
- अंग्रेजी की दुष्टता — 39
- उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर कुछ विचार — 41
- टैक्स या लूट — 43
- भारतीय अर्थ-नीति : विकास की एक दशा — 46
- विकेंद्रीकरण की विडंबना — 48
- कुछ बिना काम किए जीते हैं, कुछ काम करते हैं, जीते नहीं ! — 51
- राष्ट्रीयकरण नहीं राष्ट्रीय दृष्टिकोण चाहिए — 54
- आर्थिक नीतियों का पुनर्मूल्यांकन — 55
- रिश्वत का बाजार कैसे ठंडा करें — 59
- विद्यार्थी और अनुशासन — 60
- 144 (दीनदयाल जी का प्रथम व्यंग्य लेख) — 63
- राजनीतिक आय-व्यय — 66
- दीनदयाल जी का पत्र मामा के नाम — 68
- दीनदयाल उपाध्याय और डॉ. राम मनोहर लोहिया द्वारा जारी संयुक्त वक्तव्य...

प्रतिसर्ग
चिंतन-चौथी
- भारतीयता की युगीन परिभाषा — श्री रामनाथ कोविंद — 70
- सनातन दृष्टि का युगानुकूल भाष्य : एकात्म मानवदर्शन — डॉ. मोहनराव भागवत — 72
- राष्ट्र का राजनीतिक प्रबोधन और एकात्म मानवदर्शन — डॉ. कृष्ण गोपाल — 74
- अद्वैत वेदान्त और एकात्म मानववाद — स्वामी गोविन्ददेव गिरी — 79
- भारतीय अर्थचिंतक : दीनदयाल उपाध्याय — डॉ. बजरंग लाल गुप्ता — 86
- दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन — शांता कुमार — 92
- दीनदयाल उपाध्याय और एकात्म मानववाद — डॉ. कमलकिशोर गोयनका — 95

- समावेशी विकास के लिए समेकित अर्थनीति — प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा — 99
- एकात्म मानव-दर्शन और युग-संदर्भ — सवाई सिंह शेखावत — 106
- संपादकों के भी संपादक दीनदयाल जी — मनोहर पुरी — 111
- प्रजातंत्र का आधार : आर्थिक विकेन्द्रीकरण — इन्दुशेखर 'तत्पुरुष' — 116

प्रतिसर्ग

सृजन-वीथी

- दीनदयाल उपाध्याय के दो उपन्यास — डॉ. महेश चन्द्र शर्मा — 121
- दीनदयाल उपाध्याय के उपन्यास का कथ्य एवं शिल्प — डॉ. चमनलाल गुप्त — 128
- जगद्गुरु श्री शंकराचार्य : एकात्ममानव दर्शन की पूर्व पीठिका — डॉ. उमेश कुमार सिंह — 137
- दीनदयाल जी के उपन्यास — डॉ. मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ — 152
- शंकर का जीवन और दर्शन : उपन्यास में — महा.म. देवर्षि कलानाथ शास्त्री — 162
- राष्ट्र की स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा सत्य है — डॉ. उदय प्रताप सिंह — 167
- राष्ट्र के भौतिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष के भावक : दीनदयाल उपाध्याय — प्रो. कृष्ण कुमार शर्मा — 172
- दीनदयाल उपाध्याय के साहित्य में इतिहास-चेतना — हनुमान सिंह राठौड़ — 181
- एकात्म मानवदर्शन : दीनदयाल उपाध्याय का मौलिक दार्शनिक सिद्धांत, विवेचन और तत्व मीमांसा — प्रकाश परिमल — 186
- दीनदयाल उपाध्याय : एक साहित्यकार — प्रो. परमेन्द्र दशोरा — 191
- राष्ट्रधर्म और मानवधर्म की गौरवगाथाओं द्वारा भारतीयत्व से साक्षात्कार — डॉ. नवीन नन्दवाना — 195
- दीनदयाल उपाध्याय के उपन्यासों का औपन्यासिक परिवेश व अंतर्वस्तु — जितेन्द्र निर्मोही — 201
- जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य उपन्यास का शैलीगत वैशिष्ट्य — डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी — 206
- सनातन भारत के उन्नायक के जीवन-दर्शन की उज्ज्वल दीठ — डॉ. राजेश कुमार व्यास — 210
- जगद्गुरु शंकराचार्य : व्यक्तित्व-पल्लवन के विविध चरण — कुन्दन माली — 214
- वैचारिक थाती सहेजने का गंभीर प्रयास — इष्टदेव सांकृत्यायन — 216
- एक महामनीषी की जीवन-यात्रा — सन्निधि शर्मा — 227

विसर्ग

- दीनू देख रहा है — डॉ. देवेन्द्र 'दीपक' — 232
- दीनदयाल : कुछ शब्द चित्र — सुरेन्द्र डी. सोनी — 235
- भारतीयता के अनुगायक — डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' — 239
- दीनदयाल उपाध्याय की स्मृति में — बलवीर सिंह 'करुण' — 241
- दीनदयाल यही कहते हैं — रमेश कुमार शर्मा — 243

उपसर्ग

- साहित्यिक परिदृश्य — 246
- पत्र सेतु — 252

सम्पादकीय...

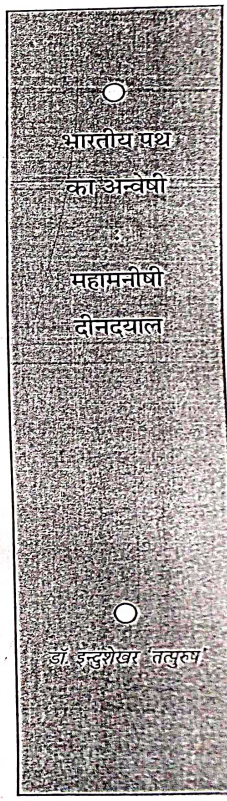

दीनदयाल उपाध्याय उन गिने-चुने राष्ट्रनायकों में से हैं जिन्होंने स्वतन्त्र भारत की राजनीति में भारतीयता और उसके 'मौलिक देसीपन' की प्राणप्रतिष्ठा की। गांधीजी के दुःखद अवसान के बाद भारत के इस 'मौलिक देसीपन' की रक्षा करने वाला वैसा कोई दूसरा मार्गदर्शक न था। देश के राजनीतिक पटल पर आई इस रिक्तता को दीनदयाल उपाध्याय ने पूरा किया। अन्तर इतना अवश्य था कि गांधीजी का ध्येय भारत को अंग्रेज और अंग्रेजीयत के चंगुल से मुक्त कराना था वहीं, दीनदयाल जी के आने तक भारत तो स्वतन्त्र हो गया पर भारतीयता पहले के बनिस्पत और अधिक गुलाम हो गई। इसका कारण यह था कि किसी नवस्वतंत्र राष्ट्र की सर्वोच्च प्राथमिकता उसका पुनर्निर्माण करना होता है और उस समय यह मान लिया गया था कि विकास के सारे रास्ते 'पश्चिमीपथ' या 'अंग्रेजीयत' में से होकर ही आते-जाते हैं। नवनिर्माण और विकास का आधार अनिवार्यतः पश्चिम-परस्ती है। दीनदयाल जी ने इस बौद्धिक गुलामी का प्रखर प्रतिरोध करते हुए अपना सारा जीवन 'विकास के भारतीयपथ' की खोज में लगा दिया।

भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के निर्माता के रूप में जाने जाते हैं। गुरु जी की प्रेरणा से एक सशक्त विपक्षी दल का ढांचा खड़ा करने में उन्होंने स्वयं को अर्पित कर दिया। प्रजातान्त्रिक प्रणाली में यह कोई कम महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं है। एक सजग और समर्थ विपक्ष के बिना लोकतन्त्र पक्षाघात के रोगी की तरह अधूरा होता है और दीनदयाल जी ने इस जिम्मेदारी को पूरी निष्ठा और नैतिकता के साथ निभाया। पर दीनदयाल जी का महत्व केवल इस कारण ही नहीं है। उनका महत्व उस देन से है जो उन्हें अप्रतिम

करना जिस सरल भाषा में सहजता से पंडितजी ने व्यक्त किया है उससे निश्चित रूप से उनके व्यक्तित्व की सरलता एक साहित्यकार के रूप में प्रकट होती है।

बौद्ध धर्म के अनुयायियों तथा कालान्तर में आई बौद्ध धर्म में व्याप्त बुराइयों का प्रतिकार करने शंकर निकले, किंतु स्वयं ने शाक्य मुनि अर्थात् गौतम बुद्ध के प्रति अपना श्रद्धा भाव बनाए रखा यह इस पुस्तक से स्पष्ट होता है जिसका सीधा संदेश श्रेष्ठ मुनि या श्रेष्ठ तपस्वी गौतम बुद्ध का विरोध नहीं अपितु बौद्ध धर्म में आई बुराइयाँ एवं उसके कारण भारत के विघटन को रोकना, उसके लिए संपूर्ण देश में अपने स्वभाव, ज्ञान, विनम्रता सहिष्णुता इत्यादि सद्गुणों के आधार पर सभी को साथ लेकर एक सांस्कृतिक भारत के पुनर्निर्माण के कठिन कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने तथा आने वाले हजारों वर्षों तक भारतीय संस्कृति का परचम फहराता रहे, विश्व बंधुत्व की भावना जाग्रत रहे, यह जिस सरलता से दृढ़ निश्चय के साथ शंकराचार्य ने किया उसे इतनी ही सरलता से उद्देश्य विशेष के साथ पुस्तक रचकर उपाध्याय जी ने किया है।

सुदूर दक्षिण से लकर पूर्व-पश्चिम, उत्तर में कश्मीर तथा उत्तर पूर्व में कामरूप तक की दिग्विजयी यात्रा करते हुए शंकराचार्य जी ने जिस समर्पण के साथ राष्ट्रीय एकता के लिए सफल प्रयत्न किया उसे पुस्तक में बड़े स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। शंकराचार्य ने मात्र 32 वर्ष की आयु में अपने पुरुषार्थ निश्चय एवं त्याग के बल पर संपूर्ण भारत को कर्म की स्फूर्ति प्रदान करते हुए सनातन वैदिक धर्म को, वेदान्त को स्थापित किया तथा उनके द्वारा प्रदान की गई प्रस्थानत्रयी जिसमें गीता, ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषद सम्मिलित हैं उनके आधार पर भारतीय जीवन दर्शन तथा विविधता में एकता का समेत स्वर उच्चारित किया, उससे उन्हें जगद्गुरु के रूप में हम भारतीय अपने हृदय में स्थापित करें यही उनके प्रति सच्ची सेवा होगी।

कुलपति, कोटा विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा

बाल्यावस्था में जब दीनदयाल केवल सात-आठ वर्ष के थे, उनके घर पर डाकूओं ने आक्रमण कर दिया। एक डाकू ने उनकी मामी को धकेलते हुए तथा दीनदयाल को गिराकर उनकी छाती पर पांव रखकर घर के आभूषण मांगे। दीनदयाल ने डाकू के पांव के नीचे दबे-दबे ही कहा, ''हमने सुना था कि डाकू गरीबों की रक्षा के लिए अमीरों का धन लूटते हैं, किन्तु तुम तो मुझ गरीब को भी मार रहे हो।'' डाकू सरदार पर अबोध बालक की निर्भयता का असर हुआ, वह गिरोह लेकर वहां से चला गया।

राष्ट्रधर्म और मानवधर्म की गौरवगाथाओं द्वारा भारतीयत्व से साक्षात्कार

डॉ. नवीन नन्दवाना

भारत के स्वर्णिम अतीत को आधार बनाकर हिंदी के कई रचनाकारों, विचारकों और चिंतकों ने अपनी कलम चलाई है। हिंदी साहित्य के इतिहास में तो एक दौर ऐसा आया जब साहित्यकारों ने किसी न किसी इतिवृत्त को आधार बनाकर साहित्य की विविध विधाओं में लेखन किया है। मैथिलीशरण गुप्त का स्मरण किया जाए तो उनके द्वारा रचित महाकाव्यों व खंडकाव्यों में भारत व यहाँ की संस्कृति की सतरंगी छविछटा विद्यमान दिखाई पड़ती है। 'जयद्रथ वध', 'भारत भारती', 'साकेत', 'यशोधरा', 'जयभारत' में हम भारत के गौरवशाली अतीत को देख सकते हैं। जयशंकर प्रसाद ने तो भारत के इसी इतिहास को आधार बनाकर 'चंद्रगुप्त',स्कन्दगुप्त और 'ध्रुवस्वामिनी' जैसे कई नाटकों की रचना कर पाठकों को भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं परिचित कराते हुए हमारे स्वर्णिम अतीत का गौरवगान किया है। इस तरह का महत्त्वपूर्ण कार्य केवल हिंदी रचनाकारों ने ही नहीं बल्कि भारतीय विचारकों, चिंतकों और राजनेताओं ने भी किया। जब हम भारतीय विचारकों, चिंतकों आदि का स्मरण करते हैं तो कई नाम हमारी स्मृति में आते हैं। उनमें स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, महर्षि अरविंद, महात्मा गाँधी, डॉ. भीमराव अंबेडकर और पंडित दीनदयाल उपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने विचारों व चिंतन को विशेष रूप से अपने लेखों व निबंधों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। उनके निबंध साहित्य का अध्ययन कर हम उनकी चिंतन दृष्टि व गंभीर विषयों पर भी सहज विश्लेषण क्षमता से परिचित हो सकते हैं। श्री भाऊराव देवरस की प्रेरणा से उन्होंने ललित साहित्य लेखन की दिशा में भी अपनी कलम चलाई। और इस सबके पीछे उद्देश्य था कि नई पीढ़ी के बालकों को भारतीय इतिहास के साथ-साथ संस्कृति व मानवीय मूल्यों का बोध कराया जा सके। एक ही रात में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने 'चंद्रगुप्त' नामक बाल उपन्यास की रचना कर अपने लेखन कौशल और संस्कृति चिंतन का परिचय दिया। इसी प्रकार उन्होंने एक उपन्यास 'जगद्गुरु

148

शंकराचार्य' भी लिखा। साहित्यिक विधाओं को लेकर किये गए लेखन में उनको ये दोनों विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। स्वयंसेवक के नाते जिस निष्ठापूर्ण व्यक्तित्व का जीवन निर्माण करना था, इसके लिए 'सम्राट चंद्रगुप्त', तथा प्रचारक के नाते जीवन व्रती तैयार करने के लिए 'जगद्गुरु शंकराचार्य' औपन्यासिक कृतियों का दीनदयाल जी ने सृजन किया। उनके भीतर का साहित्यकार इन कृतियों से परिलक्षित होता है।''[1] स्वयं दीनदयाल उपाध्याय ने इन महापुरुषों के योगदान का स्मरण करते हुए लिखा है कि- ''आज भारत के इतिहास में क्रांति लाने वाले दो पुरुषों की याद आती है। एक वह कि जब जगद्गुरु शंकराचार्य सनातन वैदिक धर्म का संदेश लेकर देश में व्याप्त अनाचार को समाप्त करने चले थे और दूसरा वह कि जब 'अर्थशास्त्र' की धारणा का उत्तरदायित्व लेकर संघ राज्यों (Republics) में बिखरी राष्ट्रीय शक्ति को संगठित कर साम्राज्य की स्थापना करने चाणक्य चले थे। आज इस प्रारूप को प्रस्तुत करते समय वैसा ही तीसरा महत्वपूर्ण प्रसंग आया है, जब कि विदेशी अवधारणाओं के प्रतिबिंब पर आधारित मानव संबंधी अधूरे और अपुष्ट विचारों के मुकाबले विशुद्ध भारतीय विचारों पर आधारित मानव कल्याण का संपूर्ण विचार 'एकात्म मानववाद' के रूप में उसी सुपुष्ट भारतीय दृष्टिकोण को नए सिरे से सूत्रवद्ध करने का काम हम प्रारंभ कर रहे हैं।''[2]

'सम्राट् चंद्रगुप्त' नामक बाल उपन्यास बालकों का दिशाबोध करने में अपनी महती भूमिका निभाता है। यह भारतीयता की भावना से बालमन को अवगत कराने में सक्षम है। दीनदयाल उपाध्याय जी अपनी इस रचना के संबंध में लिखते हैं कि- ''प्रस्तुत पुस्तक में ऐतिहासिक तथ्यों के ढाँचे पर अपनी भाषा का रंग चढ़ाकर चंद्रगुप्त का चिरित्र लिखा गया है। नायक की एक ध्येय निष्ठा ने स्वयं ही उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की है। कुछ घटनाओं का वर्णन पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखे गए इतिहास से मेल नहीं खाता है। प्रस्तुत वर्णन कल्पना के आधार पर न होते हुए भी अपने प्राचीन तथ्यों तथा भारतीय विद्वानों द्वारा दी हुई आधुनिक खोजों के आधार पर है। जिनके लिए यह पुस्तक लिखी गई है, उन्हें सब प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों के वन में भ्रमण कराने की आवश्यकता नहीं है। इतना जानना पार्याप्त है कि यूरोपीयन विद्वानों द्वारा प्रयत्नपूर्वक एवं उनका अंधानुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों द्वारा अनजाने में फैलाए हुए अंधकार को नष्ट करने वाले ऐतिहासिक शोध के सूर्यप्रकाश में देखी हुई ये सत्य घटनाएँ है।''[3]

उपाध्याय जी का यह बाल उपन्यास इस बात को भलीभाँति दर्शाता है कि पुण्य भूमि भारत ने अपने विशाल अतीत में वैभव व पराभव के कई कालखंड देखे हैं। उत्कर्ष और अपकर्ष का दौर बराबर चलता रहा है। प्रत्येक सम-विषम स्थितियों में भारत ने अपनी आत्मा को बलवती रखते हुए अपनी राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना के दीपक को आँधियों में भी सदैव प्रज्वलित रखा है। भारत-भू ने सदैव उन कर्मठ वीरों को जन्म दिया है जिन्होंने अपनी नीति-निपुणता और स्वाभिमान के जरिये भारतवासियों को जागृत करने का सार्थक प्रयास किया है। अपनी इस रचना में उपाध्याय जी ने भारत के आज से लगभग 2400 वर्ष पुराने उस घटनाक्रम को वाणी प्रदान की है जिसमें कि चंद्रगुप्त और चाणक्य ने मिलकर अपनी नीतियों और पौरूष के बल पर न केवल अलिक्सुंदर को भारत से बाहर जाने पर विवश किया बल्कि संपूर्ण भारत में एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर संपूर्ण विश्व के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

चंद्रगुप्त की अजेय शक्ति और चाणक्य की असाधारण प्रतिभा के बल का लौहा विदेशियों ने भी माना और उनको इसी कारण भारत से बाहर भागने को मजबूर होना पड़ा। चंद्रगुप्त के साम्राज्य का सुसंगठन और वैभव प्रशंसनीय है। इस बात कि प्रशंसा न केवल भारतीयों ने बल्कि विदेशीयों ने की है। ज्ञान-विज्ञान,

व्यापार, स्वच्छता, सुनियोजन, जन हितैषी कार्य, संपन्नता और शिक्षा आदि के क्षेत्रों में चंद्रगुप्त का साम्राज्य समृद्ध था। जिस स्वच्छता और सुनियोजन की बात आज की सरकारें करती हैं, वैसा ही सुनियोजन हम आज से शताब्दियों पहले के भारत में देख सकते हैं। ''भारत में कई बड़ी-बड़ी सड़कें मौर्य शासन में बनीं। उनके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाए गए थे। तथा थोड़ी-थोड़ी दूर पर यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशालाएँ और कुएँ बने थे। भारत के एक कौने से दूसरे कौने तक वणिकवर्ग निर्भय होकर अपना सामान ले जाते थे। चोरी और डाके का भय पूर्णतः जाता रहा था। नगर में लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे। इतना ही नहीं, किसी की चोरी होने पर राजकर्मचारी उसका पता न लगा सकें तो राज्य-कोष से उसकी क्षति पूरी कर दी जाती थी। सत्य तो यह है कि जब सब प्रकार की सुव्यवस्था और संपन्नता थी, तब कोई चोरी जैसे गर्हित, शास्त्रनिषिद्ध, लोकविघातक एवं लोकनिंद्य कर्म की ओर प्रवृत्त ही क्यों होता? राज्य में न्याय और शासन-विभाग का कार्य अलग-अलग अधिकारी देखते थे। न्याय के सामने सब समान थे। यहाँ तक कि राजपुत्र को भी, यदि वह दोषी हो तो दंड दिया जाता था। समाज विघातक कार्यों के लिए तो बहुत कठिन दंड दिया जाता था। सम्राट् चंद्रगुप्त स्वयं न्याय करता था। इसके लिए प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति सम्राट् तक पहुँच सकता था।''[4] इस कथन से हम भारत के गौरवशाली और वैभवपूर्ण व न्यायपूर्ण व्यवस्था को जाने सकते हैं। दीनदयाल उपाध्याय का यह उपन्यास बालकों को भारतीय इतिहास के इसी गौरवशाली अतीत को समझाने में सक्षम है।

यह गाथा है वैभवशाली मगध की जिसकी राजधानी कुसुमपुर (पाटलीपुत्र या वर्तमान पटना) थी। महापद्मनंद के वंशज बड़ी अच्छी तरह से साम्राज्य कर रहे थे। उनकी कार्यप्रणाली में जनहित के भाव प्रमुख रूप से विद्यमान थे। वे अपने को प्रजा का स्वामी नहीं सेवक मानकर उनके कल्याण के कार्य में संलग्न रहते थे। किंतु इस नंद वंश का अंतिम सम्राट् घनानंद अपने वंश की परम्परा से विपरीत निकला। वह विलासी था। यह एक सौभाग्य ही था कि उसका मंत्री कात्यायन उपनाम राक्षस बड़ा ही विद्वान था। वह स्वामिभक्त व राजभक्त था। वह भी नंद वंश के इस हाल पर दुखी रहता था। ऐसे राजा के प्रति प्रजा की निष्ठा में भी नितप्रति कमी आती जा रही थी। ऐसे तमस भरे माहौल में चंद्रगुप्त उन्हें एक प्रकाशपुंज की भाँति लगा। सैनिकों व जनता ने अब उसे अपना राजा मान लिया। राजा घनानंद यह जानकर आग बबूला हो गया। ''उसने आज्ञा दी कि चंद्रगुप्त को फाँसी लगा दी जाए। चंद्रगुप्त को मृत्यु का डर नहीं था। वह वीर था, वह जानता था कि देश के लिए मरने का सौभाग्य थोड़ों को ही मिलता है। वह कोई अपने लिए सम्राट् थोड़े ही बनना चाहता था। वह तो भारत को यूनानियों से बचाने के लिए तथा भारत में फिर से शांति स्थापित करने के लिए काँटों के मुकुट को ग्रहण कर रहा था। परंतु उसको इस बात का दुख अवश्य था कि वह इस अन्यायी राजा के हाथों मारा जाएगा, पर देश की रक्षा न कर सकेगा।''[5] किंतु परिस्थितियों से बचकर चंद्रगुप्त बच निकलता है।

अलिक्सुंदर ने भारत में प्रवेश किया और मजबूर होकर उसे पर्वतक के सम्मुख मित्रता का हाथ बढ़ाना पड़ा। आचार्य चाणक्य शीलभद्र को अपनी नीतिकुशलता का प्रयोग करते हुए ऐसे समाचार फैलाने का संदेश देते हैं जिससे कि अलिक्सुंदर की सेनाओं में हताशा फैले। चाणक्य नीति में कुशल थे। अपनी इसी कुशलता का परिचय देते हुए चाणक्य कहते हैं कि- ''यह समय सत्य-असत्य के विचारने का नहीं है, वत्स! अपने राष्ट्र का कल्याण और उसकी स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा सत्य है। आज तो इस झूठे सत्य को लेकर अकर्मण्य बनकर बैठ जाओगे, कल समस्त देश पर विदेशी मलेच्छों का राज्य हो जाएगा; उनका अत्याचार और उनका गोवध,

क्या यह सत्य होगा।'' इस प्रकार अपनी नीति कुशलता का परिचय देते हुए आचार्य चाणक्य यहाँ राष्ट्र प्रेम व इसकी स्वाधीनता को प्रमुखता देते हैं। आचार्य चाणक्य नंद के बल पहचकर उसे राष्ट्रधर्म का भान कराते हैं किंतु नंद उन सबके सम्मुख अपमानित करता है। इस अपमान पर चाणक्य अपनी शिखा खोलकर प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक नंद वंश का उच्छेद कर किसी योग्य राजा को इस साम्राज्य की गद्दी पर नहीं बैठा दूँ तब तक यह शिखा नहीं बाधूँगा। वे राक्षस की देशभक्ति और राजभक्ति को जानते हैं। वे उसे संदेश देते हैं कि- ''राजा राष्ट्र के लिए है, न कि राष्ट्र राजा के लिए। यदि अलिक्सुंदर आज तुम्हारा राजा हो जाए, तो उसकी भक्ति भी तुम राजभक्ति मानकर करोगे? राजभक्ति वहीं गुण है, जहाँ वह राष्ट्र और देशभक्ति की पोषक हो, अन्यथा वह पाप है, सर्वथा त्याज्य है।''[7] इस प्रकार चाणक्य पूरा प्रयास करते हैं कि विदेशी आक्रमणकारियों का भारत पूरी तरह संगठित होकर विरोध करे और यवनों को भारत से बाहर खदेड़े। चाणक्य को लगता है कि राजा का व्यसनी होना देश के लिए घातक है और ऐसे राजा का अंत करना अपने लिए नहीं राष्ट्र के लिए जरूरी है। चाणक्य चंद्रगुप्त को देश का नायक बनने के लिए तैयार करते हैं। वे उसे कहते हैं कि- ''चंद्रगुप्त तुम भूल रहे हो। तुम्हारा व्यक्तित्व अभी मिटा नहीं है। तुम अपने लिए नहीं, भारत के लिए सम्राट बनोगे। चंद्रगुप्त सम्राट् नहीं होगा, परंतु भारत सम्राट् चंद्रगुप्त होगा। पर्वतक जैसा स्वार्थी तथा महत्त्वाकांक्षी, फिर वह कितना ही वीर क्यों न हो, सम्राट् बनने के योग्य नहीं है। भारत का सम्राट् तो निस्स्वार्थ वृत्ति से संयम एवं दृढ़तापूर्वक जनता की सेवा करने वाला व्यक्ति चाहिए। भगवान ने तुमको ये गुण दिए हैं, पर तुम भूल से उन्हें अपना समझ बैठे हो। वे देश के हैं, और देश का अधिकार है कि तुम उनका उचित उपयोग करो। तुम सम्राट् बनने और न बनने वाले कौन होते हो? आज देश को आवश्यकता है तो तुम उसकी पूर्ति के लिए ...म्राट बनोगे, कल आवश्यकता होगी तो उसी के लिए तुम्हें भिक्षुक भी बनना पड़ेगा।''[8] इस प्रकार आचार्य चाणक्य राजा के कर्तव्य के साथ-साथ समय पर राष्ट्र के प्रति देशवासियों के कर्तव्य का भी संदेश देते हैं।

सेल्यूकस के आक्रमण के समय नंद का मंत्री रह चुका राक्षस भी सेल्यूकस के दूत का विरोध करता है। सेल्यूकस का आक्रमण एक प्रकार से वरदान सिद्ध हुआ। इसने सभी राष्ट्रवासियों को एकता के सूत्र में बाँध दिया। संपूर्ण भारत एक स्वर में बोलने लगा और एक इशारे पर काम करने लगा। यह जान गए कि- ''संपत्ति में देश का साथ न देने वाला क्षमा किया जा सकता है, परंतु विपत्ति में शत्रु के साथ मिलकर देशद्रोह करने वाला तो दूर रहा, देश का साथ न देकर चुप बैठने वाला भी क्षमा नहीं किया जा सकता।''[9] चंद्रगुप्त की वीरता और कर्तव्यनिष्ठा तथा आचार्य चाणक्य की मेधा और नीति के सम्मुख सेल्यूकस को संधि करने को मजबूर होना पड़ा। उसने फिर भारत पर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा की साथ ही अपनी पुत्री हेलन का विवाह भी सम्राट् चंद्रगुप्त से करवा दिया। उसका दूत मेगस्थनीज कई वर्षों तक चंद्रगुप्त के दरबार में रहा। चंद्रगुप्त की इसी वीरता और राष्ट्र प्रेम का स्मरण करते हुए दीनदयाल उपाध्याय लिखते हैं कि- ''सम्राट् चंद्रगुप्त अपने काल के एक महान् विजेता भी थे; परंतु अपनी विजय के मद में मत्त होकर उन्होंने शत्रु के प्रति कभी क्रूरता का बरताव नहीं किया। हिंदू संस्कृति की अमूल्य निधि सहिष्णुता को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। परंतु सहिष्णुता, दया और मैत्री के बड़े-बड़े शब्दों के मायाजाल में फँसाने वाले शत्रु की दाल भी उन्होंने नहीं गलने दी। विजय के पश्चात् न तो अलिक्सुंदर के समान उन्होंने विजित राजा का निर्दयतापूर्वक वध करवाया और न पर्वतक के समान विजयी होने पर भी विजित के चुंगल में फँसे। सेल्यूक को हराकर उससे उन्होंने मैत्री की,

परंतु अपने देश के ... और गौरव को भी आँच नहीं आने दी।''[10]

इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय का यह बाल उपन्यास हमारी बाल पीढ़ी का दिशाबोध करता है। यह देश के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और बौद्धिक सर्वांगीण उन्नति को दर्शाता है। साम्राज्य की सुंदर व्यवस्था को दर्शाते हुए सम्राट के परिश्रमी व दक्ष व्यक्तित्व को भी अभिव्यक्ति देता है। यहाँ हम चंद्रगुप्त के आदर्श सम्राट के स्वरूप को भी देख सकते हैं। इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय जी यह उपन्यास सरल व सहज भाषा में हमारी पीढ़ी का दिग्दर्शन करने में अपनी महती भूमिका निभाता है।

दीनदयाल उपाध्याय ने 'जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य' नाम से एक और उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास विशेष रूप से भारत के तरुणों को दिशाबोध प्रदान करने के उद्देश्य से रचा गया। उपन्यास के प्रारंभ में 'मनोगत' शीर्षक से उपाध्याय जी लिखते हैं कि- ''शंकराचार्य ने इतना ही नहीं तो समस्त हिंदू-राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने एवं उसे संगठित करने का प्रयास किया। देश के चारों कोनों पर चार धामों के प्रति श्रद्धा केंद्रित करते हुए उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष की, मातृभूमि की मूर्ति जन-जन के हृदय पर अंकित कर दी।''[11] इस रचना के माध्यम से उपाध्याय जी ने जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य के जीवन व उनके द्वारा सम्पन्न महनीय कार्यों से हमें परिचित कराया है। जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य जी के अवदान को हम इस उपन्यास के माध्यम से भली प्रकार से जान सकते हैं। ''सचमुच शंकर आज अमर है। शरीर से तो संसार में कोई अमर नहीं रहता। अमर तो वही है, जिसका यश अमर है। जब तक संसार में हिंदू जाति जीवित है, तब तक शंकर का नाम जीवित है और हिंदू जाति को तो शंकर ने समन्वय की संजीवनी पिलाकर अमर ही कर दिया है।''[12]

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य ने देश को एक ऐसे समय दिशाबोध प्रदान किया जब इस बात की देश को सख्त आवश्यकता थी। उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया और अपने इस दायित्व का निर्वहन भी भली प्रकार से किया। संन्यासी होकर भी उन्होंने कर्म का पथ अपनाया। ''नहीं भाई, जंगल में नहीं जाऊँगा। संन्यास का अर्थ संसार को छोड़कर वन में तपस्या करना नहीं है। मैंने कर्म संन्यास लिया है, जिसका अर्थ कर्म छोड़ना नहीं, कर्म करना, देश व धर्म के कर्म करना है, जो सत्य हैं तथा मनुष्य को कर्मफल-बंधन में नहीं बाँधते।''[13] वास्तव में शंकराचार्य के हृदय में अपने देश, धर्म व समाज के प्रति सच्चा स्नेह था। वे इन सबका कल्याण चाहते थे। गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा, शिष्यों के प्रति असीम स्नेह और प्रत्येक देशवासी के कल्याण की कामना उनके हृदय में सदैव विद्यमान थी। इन सब बातों को भी यह उपन्यास भली प्रकार से उद्घाटित करता है। अपने मत के प्रचार के लिए, प्रत्येक भारतीय को सही मार्ग बताने के लिए उन्होंने देशभर की यात्रा की। चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किए। समन्वय की विराट चेष्टा उनमें थी। तभी तो- ''शैव उनको साक्षात् शंकर का अवतार मानते तो वैष्णव उनमें विष्णु की छटा देखते। सभी देवी-देवता एक ही परम ब्रह्म के रूप हैं यही लोगों को वे बताते थे। रामेश्वरम् में शिव की प्रतिष्ठा और उपासना करके समुद्रोत्तरण और लंका विजय करने वाले राम और राम का नाम लेकर हलाहल का पान करने वाले शिव में विरोध कैसा? सती के शव को कंधों पर रखकर भारत भ्रमण करने वाले शिव और दूसरे जन्म में भी शिव का वरण करने की तीव्र इच्छा से घोर तपस्या करने वाली गिरिजा में कैसा अंतर? ये सब तो एक ही हैं। जो वैष्णव है, वह शैव है और शक्ति भी वही है। एक की पूजा और दूसरे का विरोध; भला यह कैसे चल सकता है।''[14] इस प्रकार उपाध्याय जी अपने इस उपन्यास के द्वारा जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य जी के संम्पूर्ण जीवन के विविध पक्षों से पाठकों को परिचित कराते हुए आज के समाज व राष्ट्र के सुदृढ़ निर्माण में उनका योगदान किस प्रकार बहुपयोगी सिद्ध हो सकता है, इस बात से भी परिचित कराया है। दीनदयाल उपाध्याय जी जगद्गुरु

के योगदान का स्मरण करते हुए लिखते हैं कि- ''उन्होंने समाज के भिन्न-भिन्न मत, तत्व और सम्प्रदायों की मूलभूत एकता को जिस प्रकार तर्क-शुद्ध और आकर्षक रूप में रखा तथा उनके द्वारा राष्ट्र की समस्याओं को जिस निष्पक्षता से सुलझाया, वह उन्हीं के लिए संभव था।''[15] उनकी टीकाओं के माध्यम से उन्होंने समाज के सम्मुख खड़े प्रश्नों को सरल, सहज भाषा में उत्तर देने का प्रयास किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शंकराचार्य का योगदान राष्ट्र की मूलभूत एकता को व्यावहारिक रूप देने में समर्थ हुआ।

संदर्भ सूची :

1 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा रचित भूमिका से।
2 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, भूमिका से।
3 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, मनोगत से।
4 दीनदयाल उपाध्याय, ाट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, उपोद्घात से, पृष्ठ 11
5 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 24
6 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 29
7 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 39
8 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 46
9 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 59
10 दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चंद्रगुप्त, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 66
11 दीनदयाल उपाध्याय, जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 08
12 वही, पृष्ठ 14
13 वही, पृष्ठ 27
14 वही, पृष्ठ 61
15 वही, पृष्ठ 110

ई-15, यूनिवर्सिटी क्वार्टर, अशोक नगर, उदयपुर

दिल्ली से दीनदयाल जी और यज्ञदत्त शर्मा जी मध्यप्रदेश के किसी स्थान को जा रहे थे। दिल्ली स्टेशन पर ही उनके डिब्बे में दो भिखारिनें चढ़ गयीं और उनके पीछे-पीछे पुलिस। एक पुलिसवाले ने डण्डे चलाकर उन महिलाओं की पिटाई प्रारम्भ कर दी। दीनदयाल जी ने उस पुलिस सिपाही का हाथ थामकर उसे रोका। उन्होंने कहा- ''इन बेचारियों से क्यों मारपीट कर रहे हो? यह उचित नहीं है।'' पुलिस वाले ने कहा- ''ये चोरियाँ करती है, उससे आप जैसे यात्रियों को ही कष्ट पहुंचता है। आप चुपचाप अपने स्थान पर जा कर बैठ जाइए और मुझे मेरा काम करने दिजिए।'' दीनदयाल जी को इस पर बहुत क्रोध हो आया। उन्होंने पुलिसवाले से कहा- ''ये महिलाएँ अपराधी हों तो न्यायाधीश उन्हें दण्ड देगा। उनकी इस प्रकार अमानुष पिटाई करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं हैं।'' दीनदयाल जी इतना कह कर रूके नहीं। उन्होंने उस पुलिसवाले का हाथ दृढ़ता से थामे रखा।